RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

मध्यकाल में मुद्रा व्यवस्था

संध्या रानी

यू०जी०सी० नेट, इतिहास कानपुर, उ०प्र०, भारत

मुगलकाल मे ऋण के रूप में लगी हुई राषि बड़ी मात्रा में प्रचलन में थी तथा षाह एवं साहुकार बड़ी मात्रा में राषि उधार देने की स्थिति में थे। वस्तुतः उधार लेने–देने में लगी हुई पूंजी की प्रादुर्भाव दो अवस्थाओं में ही देखा जा सकता है। प्रथम–ऋण के कारोबार से पूंजी का पूर्णतः संकलन होना, द्वितीय–आर्थिक जीवन के अन्य स्त्रोतों से धन संकलन कर ऋण कारोबार में लगाना। आदिम कृशि समाज में ये दोनो स्त्रोत एक–दूसरे से जुड़े हुए थे क्योंकि ऋणदेय वित्त अपने में अलग से कोई अस्तित्व नहीं रखता समाज द्वारा स्वीकृत सामाजिक अधिकारों के आधार पर ग्रामीण मुखियां भूमि के उत्पादन के एक भाग पर अपने अधिकार का दावा करता था तथा तत्पष्चात् बीज व जानवर देने के बदले अतिरिक्त धन की मांग करता था। व्यावसायिक ऋणदाताओं के वर्ग की रचना– जैसा कि लोग ऋणदेय व्यवसाय से लाभ प्राप्त करते थे तथा इस लाभ द्वारा अपनी पूंजी में वृद्धि करते थे– समाज के आर्थिक विकास को दर्षाती है। षोशण के अन्य साधनों से सूदखोरी अलग होने की व्यवस्था प्रत्येक सभ्य देष में काफी पहले प्रारम्भ हो गई थी तथा भारत कोई अपवाद नहीं था। सूदखोरी के इस विभाजन को कानूनी दर्जा समाज के चार वर्गों में से दो उच्च वर्गों पर ऐसा करने पर पाबंदी लगने से प्राप्त हुआ और यह कार्य स्वाभाविक रूप से तृतीय वर्ग वैष्य को प्राप्त था।

मूल शब्द : जातीय–व्यवस्था, समाज, साहुकार, मुद्रा एवं माप–तौल।

मध्यकालीन भारत में सूदखोरी का जातीय–व्यवस्था के रूप में होना प्राचीन परम्परा को निरन्तर रखना था, जो इस समय में पूर्णतः विकसित हुई। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि षासक एवं अमीर वर्ग के सदस्य ब्याज पर रूपया देने के विरूद्ध नहीं थे और अमीर खुसरो ख्वाजा के समान ऐसे बहुत से मुसलमान रहे होंगे जो ऋणदाताओं पर निर्भर थे। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में नवीन पद्धतियों का विकास तथा उनमें कार्यक्षमता सम्बन्धी वृद्धि के प्रति जागरूकता सांस्थायिक कार्यकलापों तक सीमित रखने का अर्थ है। इन संस्थाओं के मूल उद्देष्य तथा समाज की प्रगति में उनके योगदान की अनदेखी करना। मध्यकालीन राजनीतिक वातावरण में राज्य को भू–राजस्व से प्राप्त आय तथा किसानों के पास उनके उत्पादन में से बचा हुआ हिससा समाज में राज्य की उपादेयता को प्रमाणित करता था। इस तरह राज्य एवं कृशि उत्पादकों के मध्य संस्थाओं का अस्तित्व तभी सार्थक हो सकता था जबकि आर्थिक विकास की दर, समाज की आवष्यकताओं तथा राज्य द्वारा स्थापित प्रषासन–तंत्र में तालमेल बना रहे। इस तालमेल के आधार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कड़ी मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिकरण का स्वरूप तथा वाणिज्य व व्यापार का विकास था। वस्तुतः मौद्रिक अर्थव्यवस्था के लिए मुद्रा–व्यवस्था तथा मुद्रा के सम्बन्ध में वस्तुओं के भार का निर्धारण अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक संस्थाओं की आधारषिला थी। इस दृश्टि से मुस्लिमकाल में मुद्रा तथा तौल की पद्धति एवं विकास तथा वाणिज्य एवं व्यापार की स्थिति की अध्ययन विशय को पूर्णरूपेण समझने के लिए आवष्यक है।

मध्यकालीन भारत में मुद्रा एवं माप–तौल प्रणालियों तथा व्यवस्था में समय–समय पर स्थापित मापदण्डों की भिन्नता एवं प्रयोंगों को देखते हुए इस विशय का अध्ययन भी दो भागों– सल्तनत एवं मुगलकाल में किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सल्तनतकालीन सामाजिक स्त्रोतों में हमें इस विशय में विवरण इतने विस्तार एवं तुलनात्मक रूप में नहीं मिलते जितने की मुगलकाल में। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रस्तावित बाजार व्यवस्था तथा उसके काल में व बाद के सुल्तानों के षासनकाल में प्रचलित वस्तुओं के भाव एवं तौल का उल्लेख यद्यपि उस काल में प्रचलित मुद्रा व माप–तौल के स्वरूप पर प्रकाष डालता है तथापि आवष्यक आंकड़ों के अभाव में सल्तनतकाल में प्रचलित मुद्रा एवं मापतौल का मूल्य मुगलकालीन अथवा वर्तमान में प्रचलित मूल्यों से तुलना करना कठिन है। यद्यपि इस विशय पर कुछेक प्रयत्न किये भी गये हैं।

अलाउद्दीन खलजी का षासनकाल अन्य व्यवस्थाओं की तरह ही इस क्षेत्र में भी सल्तनतकालीन मुद्रा एवं माप–तौल व्यवस्था का स्थापनाकाल कहा जा सकता है जबकि वस्तु–विनिमय के सम्बन्ध में मुद्रा एवं तौल के मापदण्ड निष्चित किये गये। मुहम्मद तुगलकके काल में प्रतीक मुद्रा को प्रचलित करने तथा स्वर्ण सिक्कों के भार में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया था। वस्तुतः सल्तनत काल में सिक्कों की प्रमुख विषेशता उनके मूल्य का आधार प्रतीक में न होकर धातु में निहित होना था। इस प्रवृत्ति का स्पश्ट उदाहरण हमें दक्षिण में प्रचलित इस व्यवस्था में देखने को मिलता है कि वहाँ पर कुछेक परिस्थितियों में सुनारों एवं सोना–चांदी के व्यापारियों को उचित भार एवं वास्तविक मूल्य की मुद्रा आवष्यक नियमों के पालन करने पर ढ़ालने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। सिक्के की षुद्धता एवं भार की प्रामणिकता बनाये रखने के लिये राज्य द्वारा पूर्ण प्रयत्न किये जाते थे। वस्तुतः अलाउद्दीन के षासनकाल में चॉदी के तनके के भार में 175 ग्रेन से 140ग्रेन की कमी कर दी गई थी। परिवर्तन का

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

अन्य उदाहरण जो वास्तव में मुद्रा–व्यवस्था में नवीन अन्वेशण था; मुहम्मद तुगलक द्वारा प्रतीक मुद्रा के चलन में मिलता है। यद्यपि इस कार्य में वह असफल रहा।

सिक्के में धातु की षुद्धता सल्तनतकालीन मुद्रा की मूल विषेशता थी। किन्तु इस काल में प्रचलित सिक्कों की धातु भिन्नता उनके मूल्य का निर्धारण करती थी। सामान्यतः बाजार में प्रचलित सिक्कों में जीतल व तनका सर्वाधिक प्रयोग में आतेथे। षिहाबुद्दीन अलउमरी ने, जिसने चौदहवीं षताब्दी के पूर्वाद्ध में हिन्दुस्तार के बाहर रहकर यहां के विशय में महत्वपूर्ण विवरण लिखा है– अपने ग्रंथ मसालिकुल अवसार की मसालिकुल अमसार में लिखा है कि ''हिन्दुस्तान में लाल तनका तीन मिस्काल के बराबर होता है तथा सफेद तनका अर्थात् चांदी के तनके में 8 हस्तगानी दिरहम होते है।'' यह हस्तगानी दिरहम चाँदी के दिरहम के वनज के बराबर है जो मिस्त्र तथा षाम में प्रचलित है। इन हस्तगानी दिरहम में चार सुल्तानी दिरहम होते है। इन्हें दोमानी कहते है। ये सुल्तानी दिरहम षष्तगानी दिरहम के एक तिहाई के समानान्तर होते है और यह एक प्रकार का सिक्का है जो हिन्दुस्तान में चलता है। इस सुल्तानी दिरहम का आधा बगानी कहलाता है और एक जीतल होता है। एक दूसरा दिरहम द्वजदेहगानी कहलाता है जिसका मूल्य हस्तगानी के ड्योढ़ जितना हेाता है। एक अन्य दिरहम षाज–देहगानी कहलाता है जिसका मूल्य दो दिरहम के बराबर होता है। इस समय हिन्दुस्तान में छह प्रकार के दिरहम हैं– षान्ज देहगानी, द्वजदेहगानी, हस्तगानी, षष्तगानी, सुल्तानी तथा यगानी। इनमें सबसे छोटा सुल्तानी दिरहम होता है। ये तीनो दिरहम प्रचलित है और इनमें व्यापारिक लेन–देन इन्हीं से होता है, परन्तु अधिकांष कारोबार सुल्तानी दिरहम में होता है जो मिस्त्र तथा षाम के दिरहम के चौथाई के बराबर होता है। इस सुल्तानी दिरहम में आठ फुलूस अथवा दो जीतल होते है। प्रत्येक जीतल 4 फुलूस के बराबर होता है। इस प्रकार हस्तगानी दिरहम जो मिस्त्र तथा षाम में प्रचलित चाँदी के दिरहम के बराबर होता है; 32 फुलूस है।''

उक्त विवरण मुहम्मद तुगलक के षासनकाल में प्रचलित सोने व चाँदी के सिक्कों के विभिन्न प्रकार तथा व्यापार में इनके प्रयोग पर महत्वपूर्ण प्रकाष डालता है साथ ही मिस्त्र एवं षाम में प्रचलित सिक्कों के साथ मूल्यांकन तत्कालीन भारत का मिस्त्र एवं षाम के साथ व्यापारिक संबंधों तथा मुद्रा के मूल्य के निर्धारण को प्रकट करता है। वस्तुतः चौदहवीं षताब्दी में प्रचलित मुद्राओं के विशय में ज्ञान के लिए षम्ससिराज अफीफ द्वारा फीरोज तुगलक के विशय में दिया गया विवरण अपने आपमें महत्वपूर्ण है। अफीर के अनुसार 'सुल्तान फीरोजषाह ने विभिन्न प्रकार के सिक्के चलाये। सोने का तनका, चाँदी का तनका, सिक्कये चिहल व हस्तगानी (48जीतल मूल्य की मुद्रा), मोहर विस्त व पंजगानी (24 जीतल के मूल्य की मुद्रा), द्वजदेहगानी (12जीतल के मूल्य की मुद्रा), दहगानी(10 जीतल के मूल्य की मुद्रा), हस्तगानी(8 जीतल के मूल्य की मुद्रा), षुषगानी(6जीतल के मूल्य की मुद्रा) तथा मोहरे यक जीतल (एक जीतल की मुद्रा)। अफीफ के विवरण से ज्ञात होता है कि फीरोज तुगलक के षासनकाल मं सोने व चांदी की मुद्रा का छोटी इकाई जीतल के साथ समानान्तर अनुपम ही निष्चित नहीं किया गया अपितु जीतल की इकाई आधी एवं चौथाई भी प्रचलित की गई जिससे लेन–देन में पूर्ण सुविधा हो सके।

यह उल्लेखनीय है कि अलाउद्दीन की बाजार व्यवस्था के अंतर्गत कीमतों की सूची में जीतल का विभाजन एक–तिहाई तक वर्जित किया गया है तथा चाँदी के सिक्के का प्रचलन सामान्य व्यवस्था के अंतर्गत देखा जा सकता है। फरिष्ता के अनुसार अलाउद्दीन खलजी के षासनकाल में तनका एक तोले सोने अथवा चाँदी का होता था। चाँदी का प्रत्येक तनका 50 ताम्बे के पाले (पैसे) के बराबर होता था जो जीतल कहलाता था, किन्तु इनके वजन के विशय में कोई जानकारी नहीं है। कुछ का विचार है कि इसका वजन एक तोला ताम्बा होता था। कुछ का यह मत है कि इस समय के तोल के समान इसका वजन पौने दो तोला होता था। अलाउद्दीन के समय में एक तनका एक तोला के बराबर होता था तथा एक तोला मे 50 जीतल होने के विशय में नेल्सन राइट का मत है कि एक तनका में 48 जीतल में होने का अनुमान 50 जीतल की अपेक्षा अधिक सम्भावित है। एक चाँदी के तनके मे 48 जीतल होने का अनुमान उक्त वर्णित तुगलककालीन सामयिक विवरण से भी स्पश्ट होता है।

इस तरह सल्तनतकालीन सुल्तानों ने चाँदी के सिक्कों का ताँबे के सिक्कों में विभाजन की व्यवस्था जो कि हिन्दू षासकों के अंतर्गत विद्यमान थी; चालू रखी। हिन्दू समसंख्या गणना के लिए चौथाई के पैमाने को अपनाते थे। दिल्ली सुल्तानों ने चाँदी के एक तनके का 64 जीतल या कानी में विभाजन की व्यवस्था जारी रखी जो मुमालिकुल अमसार के उक्त विवरण से स्पश्ट होती है। बहलोल लोदी ने बहुलोली नामक सिक्का चलाया जो षेरषाह व अकबर कालीन दाम की तरह तनका का 40वाँ भाग होता था। सुल्तान सिकन्दर लोदी के षासनकाल में ताम्बे का सिक्का प्रतिपादित किया गया जो एक चाँदी के सिक्के का 20वाँ भाग था यह सिकन्दरी तनका अर्थात् दुगुना–दाम अकबर कालीन दाम का अग्रगामी था। इस तरह तनका के स्थापित मूल्यांकन के अनुपात में सिकन्दरी तनका 64/20 अथवा 3.2 जीतल तथा षेरषाही एवं अकबरी दाम 64/40 अथवा 1.6 जीतल था।

फरिष्ता के अनुसार अलाउद्दीन के समय में एक मन चालीस सेर का होता था। प्रत्येक सेर 24 तोले का होता था। मुमालिकुल अमसार के विवरण से स्पश्ट है कि मुहममद तुगलक के षासनकाल में तौल का मापदंड मन एवं सेर में होता था। 'इनलोगों का रतल सेर कहलाता है जिसका वजन 70मिस्काल होता है जो 102⅔ मिस्त्री दिरहम के बराबर होता है। प्रत्येक मन 40 सेर का होता है। इस तरह इस तरह एक मन 40 सेर का होता था, एक सेर 70मिस्काल के बराबर। एक मिस्काल का भार औसत 72 ग्रेन मानने पर एक सेर 5040ग्रेन तथा एक मन 201,600 ग्रेन अर्थात् 28.8 पौंड भार का होता था। फरिष्ता द्वारा व्यक्त

मन के भार के अनुसार एक मन चालीस सेर का तथा एक सेर 24 तोले का निष्चित होता है। थॉमस के मूल्यांकन के अनुसार फरिष्ता के विवरण के आधार पर एक मन ब्रिटिषकालीन 14 सेर के बराबर था।

दिल्ली सल्तनत की आधार प्रणाली मज़बूत हुई तथा चॉदी के टंके और तॉबे के दिरहम पर आधारित एक ठोस मुद्रा धीरे–धीरे स्थापित हुई जिससे देश में व्यापार की वृद्धि हुई। नगरों और नगरीय जीवन का विकास इसकी पहचान था। इब्न–बतूता ने दिल्ली को इस्लामी दुनिया के पूर्वी भाग का सबसे बड़ा नगर कहा था। वह कहता है कि दौलताबाद (देवगीर) आकार में दिल्ली के बराबर था और यह उत्तर–दक्षिण के बीच व्यापार की वृद्धि का सूचक था। उत्तर–पश्चिम में अन्हिलवाड़ा (पाटन) और कैंबे (खंबायत) उस समय के दूसरे महत्वपूर्ण नगर थे। एक आधुनिक इतिहासकार का कथन है कि कुल मिलाकर 'सल्तनत एक फलती–फूलती नगरीय अर्थव्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करती हैं ऐसी अर्थव्यवस्था के लिए बड़े पैमाने पर वाणिज्य आवश्यक रहा होगा।' बंगाल और गुजरात के नगर अपने उम्दा कपड़ों के लिए प्रसिद्ध। था। बंगाल का सोनारगॉव अपने कच्चे रेशम और महीन सूती कपड़े के लिए प्रसिद्ध था। भारत दूसरी बहुत–सी दस्तकारियों के लिए भी मषहूर था, जैसे चमड़े का काम, धातु का काम, कालीनसाजी, फर्नीचर समेत लकड़ी का काम, पत्थर की कटाई आदि। तुर्कों ने कुछ नई दस्तकारियॉं भी षुरू की जिनमें कागज का उत्पादन षामिल था। कागज बनाने का कला चीनी लोग दूसरी सदी में ही जान चुके थे। अरब जगत पॉंचवी सदी में इससे अवगत हुआ और यूरोप में यह कला पंद्रहवीं सदी में पहुँची।

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रो0 हरिष्चन्द्र वर्मा, दिल्ली सल्तनत, दिल्ली, 1983
2. डाइनमिक्स ऑफ अर्बन लाईफ इन प्रीमुगल इण्डिया
3. लल्लनजी गोपाल, Economic life if Northern India (CAD, 700-12000)
4. डॉ0 यूसूफ अली : मेडिवल इंडिया सोषल एंड इकोनामिक कंडीषन : लंदन 1932
5. आर0एच0 मेजर : इंडिया इन दी 15 सेंचुरी
6. जयषंकर मिश्रा : 11वीं सदी का भारत : वाराणसी : 1970
7. अब्बास रिजवी : तुगलक कालीन भारत : भाग–2, 1956–57 (अलीगढ़)

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)